न्यायमूर्ति जवाहर लाल गुप्ता और न्यायमूर्ति एन. सी. खिंची के समक्ष

रघुबंश, -अपीलार्थी

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य, -प्रतिवादीगण

एल. पी. ए. सं. *422* सन *1991*

3 फरवरी, 1998

परिसीमा अधिनियम, *1963*- धारा *5* - *12* साल की देरी के बाद दायर की गई नियमित पहली अपील- वित्तीय बाधाओं और कानूनी ज्ञान के अभाव के कारण समय पर अपील दायर ना करने उपरान्त परिशमन हेतु आवेदन । -आवेदन खारिज- लेटर्स पेटेंट अपील में यह तर्क दिया गया है कि अपील दायर गलत सलाह के कारण नहीं की गई थी- नवीन तर्क मान्य नहीं है -अपील खारिज कर दी गई।

अभिनिर्धारित किया कि हमने इस न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने के समय दायर धारा 5 के तहत दायर आवेदन का अवलोकन किया है। इस आवेदन में, अन्य बातों के साथ-साथ, पैराग्राफ 4 में यह कहा गया है कि "अपील को दायर करने में लगभग 12 साल 10 दिनों का विलंब हुआ है। यह विलंब आवेदक की ओर से वित्तीय बाधाओं और कानूनी जानकारी की कमी के कारण हुआ है।आवेदक ने अपने विवेक से सोचा था कि यदि अन्य दावेदारों को उच्च मुआवजा निर्धारित किया जाता है तो वह भी उच्च मुआवजे का हकदार होगा क्योंकि राज्य अपने नागरिक के साथ एक जैसा व्यवहार करने के लिए बाध्य है, भले ही उसने अपील आदि के उपाय का सहारा नहीं लिया हो।" ऐसा कोई सुझाव भी नहीं दिया गया है कि उन्हे किसी अधिवक्ता के द्वारा गलत सलाह दी गई थी। जब अपील में आवेदन को आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तो, अपीलकर्ता ने अपील दायर ना करने का यह आधार लिया कि "उसे सलाह दी गई थी कि वह भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 28-ए के अनुसार एक आवेदन दायर कर संबंधित अपीलों में माननीय उच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार मुआवजे का पुनर्निर्धारण करा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले के तथ्यों में सुधार करने का एक सचेत प्रयास किया गया है।अपीलार्थी का रवैया स्पष्ट नहीं है।

(पैरा 4)

इसके अलावा यह अभिनिर्णित किया गया कि विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। विद्वान न्यायमूर्ति के द्वारा पारित आदेश न तो कानून के विपरीत है और न ही विकृत है। अतः इसमें कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

हर्ष अग्रवाल, अधिवक्ता, अपीलार्थी की ओर से।

मदन देव शर्मा, अधिवक्ता, प्रतिवादीगण की ओर से।

निर्णय

जवाहर लाल गुप्ता, न्यायमूर्ति

(1) क्या 12 वर्ष से अधिक विलंब का परिशीमन किया जाना चाहिये? विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर अपीलार्थी द्वारा किए गए अनुरोध को अस्वीकार कर दिया है। विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने वर्तमान अपील दायर की है। कुछ तथ्यों पर ध्यान दिया जा सकता है।

(2) 9 जुलाई, 1973 को हरियाणा राज्य ने धारा 4 के तहत 137 एकड़ भूमि के अधिग्रहण के लिए एक अधिसूचना जारी की थी। 5 नवंबर, 1973 को कलेक्टर ने अपना पंचाट दिया। वर्तमान अपीलार्थी सहित पीड़ित भूमि मालिकों ने धारा 18 के तहत 'संदर्भ' की मांग की।अंततः 21 जनवरी, 1978 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने मुआवजे में वृद्धि की। वर्तमान अपीलार्थी ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के फैसले के विरूद्ध कोई अपील दायर नहीं की। हालांकि, कुछ अन्य भूमि मालिकों ने आर. एफ. ए. संख्या 581 सन 1978 दायर की। 5 अगस्त, 1985 के निर्णय के माध्यम से, इस न्यायालय ने मुआवजे को 317.50 रूपये प्रति मर्ला बढा दिया। इसके पश्चात 3 अक्टूबर, 1985 को अपीलार्थी ने धारा 28-ए के अंतर्गत उसे इसी तरह का मुआवजा देने के लिए एक आवेदन दाखिल किया। अपीलार्थी ने इस न्यायालय में सी. डब्ल्यू. पी. संख्या 15822 सन 1989 इस आश्य से दायर कि आवेदन पर निर्णय नहीं लिया जा रहा था। इस याचिका को इस न्यायालय ने 5 दिसंबर, 1989 को खारिज कर दिया था। एस. एल. पी (सिविल) संख्या 1924 सन 1990 को भी आदेश दिनांकित 23 अप्रैल, 1990 के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। इसके बाद 4 मई, 1990 को अपीलार्थी ने परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 और 14 के तहत एक आवेदन के साथ इस न्यायालय में एक अपील दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह पाया कि देरी को माफ करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं था। इसलिए यह अपील दाखिल की गई है।

(3) अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री हर्ष अग्रवाल ने कथन किया है कि अपीलार्थी ने केवल गलत सलाह के कारण वर्ष 1978 में अपील दायर नहीं की थी। चूंकि यह विलंब अधिवक्ता के द्वारा दी गई गलत सलाह के कारण हुआ है, इसलिए इसका विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा परिशमन कर दिया जाना चाहिए था। उन्होंने रतन लाई बनाम हरियाणा राज्य,[1] मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय का संदर्भ दिया है। विद्वान अधिवक्ता के द्वारा हरियाणा राज्य बनाम चंद्र मणि और अन्य,[2] में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ दिया गया है। अपीलार्थी की ओर से किए गए दावे का प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विरोध किया गया है।

(4) हमने अपीलार्थी द्वारा इस न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने के समय दायर आवेदन अन्तर्गत धारा 5 का

1 1997 (2) पी. एल. जे. 259
2 जे. टी. 1996 (3) एस. सी. 371

परिशीलन किया। इस आवेदन में, अन्य बातों के साथ-साथ, पैराग्राफ 4 में यह कहा गया है कि "अपील को दायर करने में लगभग 12 साल 10 दिनों का विलंब हुआ है। यह विलंब आवेदक की ओर से वित्तीय बाधाओं और कानूनी जानकारी की कमी के कारण हुआ है।आवेदक ने अपने विवेक से सोचा था कि यदि अन्य दावेदारों को उच्च मुआवजा निर्धारित किया जाता है तो वह भी उच्च मुआवजे का हकदार होगा क्योंकि राज्य अपने नागरिक के साथ एक जैसा व्यवहार करने के लिए बाध्य है, भले ही उसने अपील आदि के उपाय का सहारा नहीं लिया हो।" ऐसा कोई सुझाव भी नहीं दिया गया है कि उन्हे किसी अधिवक्ता के द्वारा गलत सलाह दी गई थी। जब अपील में आवेदन को आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तो, अपीलकर्ता ने अपील दायर ना करने का यह आधार लिया कि "उसे सलाह दी गई थी कि वह भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 28-ए के अनुसार एक आवेदन दायर कर संबंधित अपीलों में माननीय उच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार मुआवजे का पुनर्निर्धारण करा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले के तथ्यों में सुधार करने का एक सचेत प्रयास किया गया है।अपीलार्थी का रवैया स्पष्ट नहीं है।

(5) श्री अग्रवाल ने रतन लाई के मामले में निर्णय पर भरोसा जताया है। इसमें अपीलार्थी ने यह निवेदन किया था कि कानूनी सलाह के कारण विलंब हुआ था। इस तर्क को पीठ ने स्वीकार कर लिया था। वर्तमान मामले में ऐसी स्थिति नहीं है। यह निस्संदेह सत्य है कि चंद्र मणि के मामले में यह कहा गया था कि न्यायालय को उदार रवैया रखना चाहिए और "पर्याप्त कारण" व्यंजक का व्यावहारिक रूप से "न्याय उन्मुख दृष्टिकोण" में अर्थ लगाया जाना चाहिए। हालाँकि, अधिकांश उदार अभिव्यक्ति से भी परिसीमा अधिनियम को पूर्ण रूप से लुप्त नही किया जा सकता और यह अभिनिर्धारित करना भी संभव नहीं है कि न्यायालय हर देरी को माफ करने के लिए बाध्य है, चाहें देरी कितनी भी हो और स्पष्टीकरण कितना भी असंतोषजनक क्यों न हो। यह सत्य है कि कभी-कभी पक्षकार सलाह से गुमराह हो सकता है। यदि वह न्यायालय मे आता है और पूरे तथ्य दाखिल करता है, तो न्यायालय विलंब का शमन कर सकती है।हालांकि, कथन स्पष्ट और साफ होने चाहिए। ये अस्पष्ट नहीं होने चाहिए। वर्तमान मामले में अपीलार्थी अपने "अपने विवेक" पर निर्भर था। यह धारा 5 के तहत उनका स्पष्ट मामला है। बाद में, मामले में सुधार करने और यह कहने का प्रयास किया गया कि उन्होंने कानूनी सलाह के कारण इंतजार किया था। यह स्पष्ट रूप से मूल तथ्यों में सुधार करने का प्रयास है। इन दोनों में से कौन सा सही है? यह अपीलार्थी के अधिवक्ता को भी ज्ञात नही है।

(6) श्री अग्रवाल प्रस्तुत करते हैं कि इसी तरह की अन्य अपीलें भी लंबित हैं। वे आर. एफ. ए. सं. 1244 सन 1984 (देस राज बनाम हरियाणा राज्य) का उल्लेख करते हैं।

(7) हमने यह फाइल मंगाई थी। इसे रजिस्ट्री द्वारा समक्ष रखा गया। हम पाते हैं कि अधिसूचना के साथ-साथ पंचाट भी अलग-अलग हैं। यह अधिसूचना 18 जुलाई, 1973 को जारी की गई थी और पंचाट अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फरिदाबाद द्वारा 26 मार्च, 1984 को दिया गया था। वर्तमान मामले में धारा 4 के तहत अधिसूचना 9 जुलाई, 1973 को जारी की गई थी और मामले का फैसला अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, गुड़गांव द्वारा किया गया था न कि 21 जनवरी, 1978 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद द्वारा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दोनों मामलों में एक-दूसरे के साथ कुछ भी समानता नहीं है। देस राज के मामले में कोई देरी नहीं हुई थी जिसके लिए परिशमन की आवश्यकता थी। विवाद का विषय अलग था। अतः उस मामले की लंबितता अपीलार्थी के लिए कोई सहायता नहीं हो सकती है।

(8) किसी अन्य बिंदु पर बल नहीं दिया गया है।

(9) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। विद्वान न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश ना तो कानून के विपरीत है और ना ही विकृत है। अतः इसमें कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(10) अतः याचिका खारिज की जाती है। हालांकि लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

जे एस टी।

अस्वीकरण : *स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।*

परीक्षित
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
महम, रोहतक,हरियाणा